website : www.chintanresearchjournal.com ISSN 2348 – 876X

# आर्य

International Refereed

कला, साहित्य, मानविकी, समाज-विज्ञान, वाणिज्य, प्रबंधन, विधि एवं विज्ञान विषयों का अंतर्राष्ट्रीय मूल्यांकित त्रैमासिक रिसर्च जर्नल

*(Indexed & Listed at :*

- **Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest. U.S.A.)**

**Research Bib., Japan**

वर्ष : 1 अंक : 2

( जून 2014 - अगस्त 2014 )

संपादक

आचार्य शीलक राम

Scanned by CamScanner

- **"Social Benefits of Recreational Activities Participation in our Society"**
  -Gautam Kumar Chaudhary, Rohit Kalia 159-163
- **A Comparative Study of Sports Competition Anxiety Level in National Level and State Level Football Players of Sonepat**
  -Pavitra Chaudhary, Saroj Malik 164-166
- **Comparative Study of The Sports Achievement Motivation Between Judo Players of East and South Delhi**
  -Omveer, Nidhi Jain 167-169
- **Psychological Care of Injured Athlete**
  -Rajesh Aggarwal 170-171
- **"Health Related Benefits of Recreational Activities Participation in our Society"**
  -Gautam Kumar Chaudhary, Rohit Kalia 172-177
- **Comparative Analysis of selected Physical Fitness Components Women Judo players of Weight Categories**
  -Omveer, Nidhi jain 178-182
- **Developing Wrestling Skills and Strategies**
  -Naveen Kumar 183-188

**Commerce/Management**

- **Measurement Challenges of Inflation In India : An Analysis**
  -Nidhi Walia 189-195
- **Multinational Corporations in India- Its Impact**
  -Manisha Garg 196-202
- **India and China Trade Relationship- A Study of FDI Inflow and Outflow.**
  -Basau Ram, Shiv Ratan 203-210

**Home Science**

- **Rags Recycling-An Eco-Friendly Yarn Making Technique (A case study of Shoddy industry at Panipat, Haryana, India)**
  -Neeta Nagpal 211-218

**Misc.**

- **Comparative Study of Fat Percentage and Muscle Mass of College Students of Hilly and Plain Areas**
  -Aakash Ohlyan, Harish Kumar 219-221
- **शांकर व माध्व वेदांत में 'जीव' : एक अध्ययन**
  -डॉ.ममता भाटी 222-226


Scanned by CamScanner

आर्य रिसर्च जर्नल (ISSN : 2348 – 876X)
वर्ष:1, अंक:2, (जून 2014-अगस्त 2014) (पृ.222-226)
International Refereed

विविध

# शांकर व माध्व वेदांत में 'जीव' : एक अध्ययन

डॉ.ममता भाटी
असिसटेंट ओफेसर
महिला पी. जी. महाविद्यालय
जोधपुर (राजस्थान)

शोध-आलेख सार

अविद्या से उपहित होने की दशा में जीव का पारमार्थिक स्वरूप अविद्या द्वारा आवृत रहता है और उपाधिकृत जैव रूप ही प्रकट होता है। अविद्या की दशा में जीव, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार द्वारा कर्म के फलस्वरूप भोग के कारण स्वयं को पीड़ित सा मान लेता है तथा बन्धनों में बंध जाता है। इस बन्धन की निवृत्ति ब्रह्मजीवैक्य रूप विवेक ज्ञान से अविद्या-निवृत्ति के द्वारा होती है।

मुख्य-शब्द : अविद्या, अहंकार, श्रुतिवाक्य, पारमार्थिक, प्रमाण-प्रमेय, अन्तःप्रज्ञ, बहिष्प्रज्ञ, उभयप्रज्ञ, दुःख असंपृष्ट, दुःख संपृष्ट, विमुक्त ।

''जीव'' शब्द, जीव प्राणे धातु से ''क'' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। इसका व्युत्पतिलभ्य अर्थ है - ''जीवतीति जीवः'' अर्थात् जो प्राणधारण करता है वह जीव है।[1] प्राणवक्ता, चैतन्य, ईक्षण एवं कर्तृत्व उसके मुख्य लक्षण है। शंकराचार्य का कथन है कि यह प्रकृत प्राण अविद्या, तथा पूर्वप्रज्ञारूप उपाधि वाले विज्ञानात्मा अध्यक्ष में अवस्थित होता है।[2] एम० क० व्यंकटराम अय्यर का कथन है - आत्मा और भौतिक तत्वों के समूह का नाम जीव है यह विशुद्ध आत्मा है जो भौतिकता के सीमित भाग से अनुबद्ध है। वास्तव में शरीर, बाह्य और अन्तःकरणः से युक्त चैतन्य का नाम जीव है।[3] शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य में जीव के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि जीव के नामरूपविशेष, शरीरत्रयावच्छिन्न, व राग-द्वेष आदि दोष अपारमार्थिक जैव रूप है परन्तु उसका (जीव का) पारमार्थिक स्वरूप तो बह्म ही है। वस्तुतः जीव, ब्रह्म से भिन्न नहीं है लेकिन उपाधियों के कारण ये बह्म से भिन्न प्रतीत होता है।[4] इस प्रकार जीव पारमार्थिक रूप से एक ही है किन्तु औपाधिक रूप से भिन्न-भिन्न है।[5]

अविद्या से उपहित होने की दशा में जीव का पारमार्थिक स्वरूप अविद्या द्वारा आवृत रहता है और उपाधिकृत जैव रूप ही प्रकट होता है। अविद्या की दशा में जीव, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार द्वारा कर्म के फलस्वरूप भोग के कारण स्वयं को पीड़ित सा मान लेता है तथा बन्धनों में बंध जाता है। इस बन्धन की निवृत्ति ब्रह्मजीवैक्य रूप विवेक ज्ञान से अविद्या-निवृत्ति के द्वारा होती है। जिस प्रकार नेत्र द्वारा स्फटिक स्वरूप साक्षात्कार हो जाने पर उसका स्वरूप अर्थात् स्वच्छता व शुक्लता में प्रकट होकर उसी में स्थित हो जाता है उसी प्रकार जीव श्रुतिवाक्य से ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार हो जाने पर अपने पारमार्थिक स्वरूप में अर्थात् शुद्ध, कूटस्थ, नित्य चैतन्य स्वरूप में प्रकट होकर उसी में स्थित हो जाता है विवेक ज्ञान के अभाव में अपने पारमार्थिक स्वरूप के आवृत्त रहने पर जैव रूप में संसारी तथा बद्ध बना रहता है किन्तु विवेक ज्ञान के फलस्वरूप पारमार्थिक स्वरूप के प्रकट हो जाने पर वह (जीव) मुक्त हो जाता है।[6]



Scanned by CamScanner

अद्वैत वेदान्त की यह मान्यता है कि जीवात्मा पाँच कोषों से आवृत है, परन्तु वह फिर भी उनसे पृथक है। ये पाँच कोष इस प्रकार हैं :- 1. अन्नमय कोष 2. प्राणमय कोष 3. मनोमय कोष 4. विज्ञानमय कोष 5. आनन्दमय कोष।

**अन्नमय कोष**

स्थूल शरीर के रूप में होता है। यह सकल सांसारिक भोगों का आयतन है।

**प्राणमय कोष**

पाँच प्राणों और पाँच कर्मेन्द्रियों से बनता है। यह रजोगुण से युक्त क्रियात्मक स्वरूप वाला है।

**मनोमय कोष**

पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के योग से बनता है। यह इच्छाशक्ति से युक्त होता है अतः इसे कारणरूप कहा गया है। यह ज्ञान का साधन होने से सत्वगुण से घटित है।

**विज्ञानमय कोष**

पाँच ज्ञानेन्द्रियों और बुद्धि के योग से बनता है। यह प्रकाशात्मक होने से सत्वगुण का कार्य है। इससे कर्ता, भोक्ता, सुखी एवं दुःखी होने का भान होता है। यह कर्तृशक्ति से युक्त है।

**आनन्दमय कोष**

कारण शरीरभूत अविद्या के आश्रित रहता है इसे सुषुप्ति भी कहा जाता है।

अद्वैत वेदान्ती जीव की चार अवस्थाओं को स्वीकार करते हैं[7] ये चार अवस्थायें हैं :- 1. जाग्रत, 2. स्वप्न, 3. सुषुप्ति, 4. तुरीय।

**जाग्रत अवस्था**

जीव इस अवस्था में मन और इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है। इसमें स्थूल शरीर, इन्द्रियाँ और मन सचेष्ट रहते हैं। इनके द्वारा बाह्य अर्थात् स्थूल पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है तथा उनका उपभोग किया जाता है। यह अवस्था अन्नमय कोष से आबद्ध है। इस अवस्था में जीव का व्यवहार बाह्य पदार्थों के साथ रहता है। वह बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है तथा उनका उपभोग करता है।

**स्वप्नावस्था**

स्वप्नावस्था में जीव का शरीर तथा इन्द्रियाँ विश्राम करती हैं, परन्तु उसका मन क्रियाशील रहता है। जाग्रत अवस्था में मन पर जो संस्कार पड़ते हैं उनको लेकर वह काल्पनिक विषयों की रचना करता है।[8] इस अवस्था में जीव का सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध होता है और इसे (जीव को) तैजस कहा जाता है। इस अवस्था में जीव मनोमय, प्राणमय तथा विज्ञानमय इन तीन कोषों से आबद्ध रहता है।

**सुषुप्ति अवस्था**

इस अवस्था में जीव न किसी प्रकार की कामना करता है और न कोई स्वप्न देखता है। जाग्रत और स्वप्नावस्था में जीव आनन्द के साथ दुःख का भी अनुभव करता है परन्तु इस अवस्था में तो आनन्द की ही प्रचुरता रहती है। सुषुप्ति अवस्था में स्थूलदेह, इन्द्रियाँ अन्तःकरण कार्य नहीं करते हैं। प्रमाण-प्रमेय का व्यवहार भी समाप्त हो जाता है, यह अवस्था आनन्दमय कोष से आबद्ध है यद्यपि सुषुप्ति काल में अविद्या प्रसुप्त रहती है परन्तु मोक्ष की अवस्था में अविद्या के सब बीज भस्मसात् हो जाते हैं।

**तुरीय अवस्था**

तुरीयावस्था में जीव न अन्तःप्रज्ञ है, न बहिष्प्रज्ञ है और न उभयप्रज्ञ है। यह शान्त, शिव और अद्वैतरूप है।[9] इस अवस्था में सभी प्रकार के दुःखों की निवृत्ति हो जाती है। इस अवस्था में प्राज्ञ न तो अपने को, न पराये को, न सत्य को और न अनृत को जानता है। परन्तु सर्वदृक् है। इस अवस्था में न



Scanned by CamScanner

स्वप्न आते है और न निद्रा आती है, तथा सब प्रपन्च विलीन हो जाते है और जीवात्मा अद्वैतभाव को प्राप्त हो जाता है।[10] इस अवस्था में वासना बीजों का नाश हो जाता है तथा जीव सभी कोषों से मुक्त होकर ब्रह्ममय बन जाता है।

शंकर के अद्वैत वेदान्त की मुख्य मान्यता यही है कि परब्रह्म ही अज्ञान की उपाधि से युक्त होकर जीव कहलाता है अत: जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। यह पाँच कोषों से युक्त है परन्तु उनसे पृथक है। जीव चार अवस्थाओं से युक्त होता है तथा विभु परिमाणत्व वाला है। शंकराचार्य जीव के अनेकत्व को स्वीकार करते है। शंकराचार्य ने कर्मों के कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व के आधार पर व्यावहारिक दृष्टि से जीवों में अनेकत्व का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार यदि जीव को एक मान लिया जाये तो कर्मफल की व्यवस्था में सांकर्य उपस्थित हो जायेगा क्योंकि एक ही व्यक्ति मुमुक्षु तथा फलोपभोग करने वाला नहीं हो सकता है इसलिए वे बद्ध एवं मुक्त की व्यवस्था के लिए जीवों में अनेकत्व को स्वीकार करते है। शंकराचार्य का मत है कि जीव पारमार्थिक रूप से एक है परन्तु औपाधिक दृष्टि से उसमें अनेकत्व है। जीव को समष्टि की दृष्टि से एक और व्यष्टि की दृष्टि से अनेक माना जाता है। जिस प्रकार आकाश एक है परन्तु विभिन्न घटों में उसका प्रतिबिम्ब देखकर आकाश के नानात्व की प्रतीति होती है क्योंकि महाकाश और घटगत आकाश अपने अपने स्थान पर प्रतिष्ठित है।[11] उसी प्रकार जीव में परमार्थत: एकत्व है परन्तु औपाधिक दृष्टि से उसमें भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार शंकर के दर्शन में आत्मा, ब्रह्म ही है। यह ब्रह्म के समान ही सत्-चित् और आनन्द स्वरूप है। आत्मा न उत्पन्न होता है और न मृत्यु को प्राप्त होता है यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और चिरन्तन है।

मध्व की जीव की धारणा अद्वैत वेदान्त से नितान्त भिन्न है। शंकर के अद्वैत वेदान्त में आत्मा को शुद्ध चैतन्य माना है, यह शुद्ध चैतन्य सभी प्राणियों में एक ही है। प्राणियों के चैतन्य में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है। आत्मा स्वभावत: स्वतन्त्र है, उसका कभी वास्तविक बन्धन होता ही नहीं, अज्ञानवश आत्मा अपने को बंधन में समझ लेता है। इसके विपरीत मध्व के अनुसार आत्मा अनेक है। मध्व उन्हें जीव की संज्ञा ही देते है। यही नहीं जीवों में परस्पर स्वभावगत भेद है। उदाहरणत: मध्व यह स्वीकार करते है कि कुछ जीव कभी बंधन में नहीं बंधते तथा कुछ जीव सदैव ही बंधन में रहते है। जीव सुख-दुख आदि का भोक्ता है। इसमें राग-द्वैष, घृणा, प्रेम आदि भी भाव रहते है। जीव का बंधन प्रतीति न होकर वास्तविक है। मोक्ष का तात्पर्य शंकर की तरह जीव-ब्रह्म का तादात्म्य नहीं है वरन् दु:खों का नाश है।

विष्णु तत्व निर्णय में जीव को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि "वह जो स्वयं को मै हूँ' रूप से जानता है, वह जो सुख और दु:ख का अनुभव करता है तथा जो बन्ध और मोक्ष का पात्र है, वह जीव है।"[12] जीव की यह परिभाषा शंकर की आत्मा के स्वरूप से नितान्त भिन्न है। वहाँ आत्मा शुद्ध चैतन्य है तथा नित्य मुक्त और आनन्दस्वरूप है। मध्व के दर्शन में जीव न केवल ज्ञाता है अपितु वास्तविक रूप से कर्ता और भोक्ता भी है। मध्व के अनुसार जीव प्रमाता है तथा उसका यह स्वरूप ही उसे जड़ से भिन्न करता है। जड़ प्रमाता नहीं है। वे जीव को नित्य अर्थात् अनादि और अविनाशी मानते है। जहाँ जीव का एक ओर ब्रह्म व जड़ से भेद है वही दूसरी ओर जीवों का परस्पर भी भेद यहाँ स्वीकार किया गया है। जीवों में संख्यात्मक व गुणात्मक दोनों ही प्रकार के भेद स्वीकार किये गए है। जीव अत्यन्त सूक्ष्म अणुरूप है।

जीवों का पारस्परिक भेद बद्धावस्था में ही नहीं मुक्तावास्था में भी विद्यमान रहता है। प्रत्येक जीव स्वयं में अद्वितीय है। मध्व के अनुसार यह भेद औपाधिक न होकर स्वाभाविक है। विष्णु तत्व निर्णय में मध्व, शंकर की जीव की औपाधिक अनेकता की धारणा की कटु आलोचना करते है। वे कहते है कि यदि जीवों में पारस्परिक भेद औपाधिक है तो यह बतलाना अत्यन्त कठिन है कि उपाधि जीव के एक अंश को छूती है या उसको समग्र ढक लेती है। यदि यह स्वीकार किया जाए कि वह जीव के एक अंश को ही



Scanned by CamScanner

ढकती है तो इसका यह अर्थ हुआ कि जीव सावयव है, तब सावयव होने के कारण जीव अनित्य हो जायेगा यदि उपाधि जीव के समग्र स्वरूप को आच्छादित करती है तो अनौपाधिक जीव व सोपाधिक जीव में भेद करना संभव नहीं हो पाएगा।[13] इसके अतिरिक्त यह भी प्रश्न उठता है कि उपाधि वास्तविक है या अवास्तविक है। यदि वास्तविक है तो वह जीव को वास्तविक रूप से सीमित कर देती है, यह स्थिति अद्वैत वेदान्त को स्वीकार्य नही है। यदि उपाधि अवास्तविक है तो यह मानना नितान्त अतार्किक होगा कि उपाधि आत्मा को बंधन में डालती है। अतः मध्व कहते है कि जीव की अनेकता को अनौपाधिक मानना ही युक्तियुक्त है।[14]

मध्व ने जीवों के तीन प्रकार के भेद का निरूपण किया है।

(अ) पहले प्रकार के भेद में जीवों को दुःख संपृष्ट तथा दुःख असंपृष्ट में विभक्त किया गया है। एकमात्र लक्ष्मी ही दुःख असंपृष्ट जीव की श्रेणी में मानी गई है। लक्ष्मी को कभी कोई दुःख नहीं हुआ। जबकि दुःख संपृष्ट जीव सुख एवं दुःख दोनों प्रकार के अनुभव कर्ता है।

(ब) दुःख संपृष्ट की भी दो श्रेणियाँ हैं - विमुक्त तथा दुःख संस्थ। विमुक्त जीव वे है जो भक्ति द्वारा अपने कर्म नष्ट कर, मुक्त हो चुके है। दुःख संस्थ वे जीव है जो अभी भी कर्म के बंधन में है।

(स) दुःख संस्थ की दो श्रेणियाँ हैं - मुक्ति योग्य व मुक्ति अयोग्य। मुक्ति योग्य वे जीव है जिसमें मोक्ष के प्रति तीव्र अभिप्सा है, ये मुक्ति के लिए प्रयत्न भी करते हैं। इसके विपरीत मुक्ति अयोग्य जीव, संसार में फंसे हुए है जिनमें मोक्ष के प्रति कोई लालसा नही है।

(द) मुक्त व मुक्ति योग्य जीवों की पाँच श्रेणियाँ हैं - देव, ऋषि, पितृगण, पास चक्रवृति और नर।

(य) मुक्ति अयोग्यों की दो श्रेणी है तमोयोग्य व नित्यसंसारी। तमोयोग्य की चार श्रेणी है - दैत्य, राक्षस, पिशाच। नित्यसंसारी जीव सदैव सुख-दुःख भोगते है। ये मध्यम मनुष्य ही होते है। और ये अनन्त है। ये सदैव स्वर्ग, नरक तथा पृथ्वी में घूमते रहते हैं।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मध्व ने तमोयोग्य जीवों के लिए मुक्ति की संभावना प्रकट नहीं की है अर्थात् यहाँ यह बात स्पष्ट नहीं की गई है कि जब तक ये जीव तमोयोग्य श्रेणी में रहते है तभी तक ये मुक्ति अयोग्य हैं अथवा ये सदैव के लिए ही मुक्ति से वंचित हैं। वैसे यही संभावना अधिक सही लगती है कि जब तक ये तमोयोग्य श्रेणी में रहते हैं तभी तक इन्हें मुक्ति से वंचित मानना चाहिए। मध्व का दर्शन आगमों पर आधारित है तथा आगमों में ऐसे उद्धरण मिलते हैं जहाँ ईश्वर की कृपा से पिशाच या दैत्य मुक्त हो गए।[15]

अन्य वैष्णव मतों के समान मध्व भी जीव को अणुपरिमाण का मानते हैं। चैतन्य के कारण ही वह सम्पूर्ण देह की अनुभूति कराने में सक्षम होता है। जैसे दीप का प्रकाश पूरे कक्ष को आलोकित करता है, वैसे ही जीवात्मा भी सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। अपने वैशिष्ट्य के कारण वह ऐसा करने में समर्थ है। न्याय - वैशेषिक, मीमांसा, सांख्य योग्य तथा अद्वैत वेदान्त मतानुयायी विभु परिमाणवादी, जैन मध्यम परिमाणवादी तथा वैष्णवमत अणुपरिमाणवादी है। जैसे चन्दन एक स्थान पर स्थित होने पर भी सम्पूर्ण शरीर को सुवासित करता है, वही स्थिति जीवात्मा की है।[16] श्रुतियों में जीव को आवागमन करने वाला माना है। यह तभी संभव है जब उसे अणु परिमाण का माना जाए। जीव को विभु परिमाण का मान लेने पर इन श्रुतियों के विरूद्ध जीव का स्वरूप ग्रहण करना होगा।

मध्व के दर्शन में जीव की साकारता को माना गया है। मध्व के अनुसार आकार के बिना किसी वस्तु की कल्पना करना असम्भव है। जिस तरह अणु का आकार होता है उसी प्रकार जीवात्मा का भी आकार है। अणु आकार की स्थिति जिस प्रकार से अनादि है वैसे ही जीव का आकार अनादि है।[17] आत्मप्रकाशी तत्व कोई न कोई आकार अवश्य लिए रहता है जैसे दीप की ज्योति। वैसे ही जीव की आत्मप्रकाशकता के लिए आकार का होना अपरिहार्य है। यदि जीव का आकार न माना गया तब श्रुति प्रतिपाद्य यह तथ्य भी व्यर्थ हो जायेगा कि बाह्य देह के न रहने पर भी जीव आनन्द भोग करता है। आनन्द भोग करने के लिए माध्यम की साकारता अपेक्षित है।



Scanned by CamScanner

इस तरह मध्व का जीव सम्बन्धी सिद्धान्त वैष्णवों के अनुकूल है। वह स्वरूपतः एवं सहज रूप में चैतन्य गुण से युक्त है। वह ज्ञान स्वरूप और ज्ञाता है। जीव आनन्द स्वरूप भी है। ये सभी स्वरूपगत गुण अविद्या के आवरण से आच्छन्न रहते हैं। जीव का ज्ञान, आनन्द आदि गुण ईश्वर के समान है, तथापि दोनों बिल्कुल भिन्न तत्व हैं। चैतन्य, जीव का स्वाभाविक धर्म है। वह न तो आकस्मिक है और न ही परिणामभूत।

## संदर्भ


1. शब्दकल्पद्रुम,. द्वितीय काण्ड, पृ0 539 उद्घृत वेदान्त विमर्श।
2. स प्रकृतः प्राणोऽध्यक्षेऽविद्या कर्म पूर्व प्रज्ञोपाधिके विज्ञानान्मन्यवतिष्ठते। ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, 4-2-4.
3. अद्वैत वेदान्त, लेखक एम०के०वी० अय्यर, न्यूयार्क, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1964 उद्घृत वेदान्त विमर्श।
4. (अ)''परमेश्वरमेव हि शारीरस्य पारमार्थिक स्वरूपम्, उपाधिकृत तु शारीरत्वम्'' (ब्र०स०शा०भा० 3-48)(ब) परमार्थवस्थायामी शित्री..... प्रदशर्यते। व्यवहारास्थायां तूक्तः श्रताव पीश्रराधिव्यवहारः।(ब्र०सू०शा०भा० 3-48)
5. जिस प्रकार हिरण्यगर्भ समष्टि बुद्धयु उपाधि से उपहित होने से एक है किन्तु व्यष्टिबुद्धयु उपाधि से उपहित होने के कारण अनेक हैं।
6. ''ब्रहम्सूत्र शांकरभाष्यम्'' व्याख्याकार - स्वामी श्रीहनुमानदास जी षट्शास्त्री, चौखम्बा विधाभवन, वाराणसी, पृ० 18
7. माण्डूक्योपनिषद्।
8. जागरितप्रभाववासना निर्मितत्वात् स्वप्नस्य। उद्घृत वेदान्त विमर्श Samkara's works
9. माण्डूक्योपनिषद् 7, पृ० 52.
10. माण्डूक्योपनिषद् 1/16/17, पृ० 65-67.
11. कथं भेदाभेदौ विरूद्धौ सम्भवेयाताम्, नैष दोषः। आकाशघटाकाशन्यायेनोभयसम्भवस्य तत्रा तत्रा प्रतिष्णपित्वात्। - ब्र०सू०शा०भा० 2-1-22.
12. अहमित्येव यो वेद्यः स जीव इति कीर्तितःस दुःखी स सुखी चैव स पात्रा बन्धमोक्षयोः - विष्णु-तत्व-निर्णय पृ० 26.
13. किं चौपाधिरात्मन एकदेशं ग्रसत्युत सर्वमात्मानम् ? एकदेशांगीकारे, सावयवत्वम् सावयस्वय चानित्यत्वम् सर्वग्रासे च नोपाधिर्भेदकःस्यात् - (विष्णु - तत्व - निर्णय - पृ 29)
14. A Critique of Indian Dualism by Dr. Shivnarayan Joshi Scientific Publishers. Jodhpur P - 177
15. A Critique of Indian Dualism by Dr. Shivnarayan Joshi Scientific Publishers. Jodhpur P - 178.
16. ''अणुमात्रोऽप्ययं जीवः स्वदेहं व्याप्य तिष्ठति। यथा व्याप्यशरीराणि हरिचन्दनविप्नुषः।ब्र० सू० भाष्य (मध्व) - 2/3/3-5
17. ''अणुनामणुराकारो यथा नित्योऽस्यनादितः।ज्योतिर्मया तथा जीवास्साकारा सन्तु सन्ततम्।।'' - युक्तिमल्लिका वादिराजतीर्थ - पृ 26.




Scanned by CamScanner